International Journal of Advanced Educational Research
ISSN: 2455-6157
Impact Factor: RJIF 5.12
www.educationjournal.org
Volume 3; Issue 4; July 2018; Page No. 56-61

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में नारी–चेतना : धार्मिक–नैतिक सन्दर्भ

नीरज रानी
शोधार्थी, पीएच॰डी॰ (हिन्दी) सिंघानिया विश्वविद्यालय, झुंझनु, राजस्थान, भारत।

प्रस्तावना

धर्म का अर्थ एवं स्वरूप

धर्म भारतीय समाज में सदैव सर्वोपरि तथा प्राणरूप में प्रतिष्ठित रहा है। धार्यते धारणात् वा इति धर्मः। भारतीय चिन्तकों की दृष्टि में जो विशेष गुण व्यक्ति अथवा समाज को धारण करता है अथवा व्यक्ति व समाज जिसको धारण करता है वही धर्म है। आध्यात्मिकता इसकी विशेषता मानी गयी है। व्यक्ति के लिए धर्म उस आस्था का अनुवर्ती है, जिसके अनुसरण से मनुष्य अपना ऐहिक व पारलौकिक नियमन करता है। भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान है। "धर्म शब्द से तात्पर्य उन सभी सूक्ष्म पृथग्भूत तत्त्वों से है जो भूत और चित में निहित होते हैं और जगत की उत्पत्ति के हेतु हैं। एक क्षण में एक ही धर्म ठहर सकता है, इसलिए धर्मों को स्वलक्षण की संज्ञा प्राप्त है। धर्म परस्पर मिलकर किसी दूसरे पदार्थ को उत्पन्न करते हैं, वे किसी कारणान्तर से उद्भूत होते हैं और स्वयं निरोध के प्रति अभिमुख होते हैं। सभी धर्म कारण कार्य नियम की व्यवस्था से नियमित होते हैं। सम्पूर्ण जगत् इन सूक्ष्म धर्मों के संघात से ही निर्मित हुआ है।"[1]

"धर्म ने मानव जीवन को सुंदर, नियंत्रित व अनुशासित बनाया लेकिन कालान्तर में धर्म को आधार बनाकर समाज में विद्वेषी के बीज बोए जाने लगे। धर्म में विकृति आ गई, ईश्वर की कल्पना अनेक रूपों में की जाने लगी और प्रत्येक जाति अपने–अपने ढंग से अपने इष्टदेव की अनुयायी बन गई। ब्राह्मण एवं पुरोहित वर्ग ने जन साधारण के इस अंधविश्वास का लाभ उठाया तथा सामाजिक मान्यताओं, विचारों और धार्मिक विषयों का नियंत्रण किया। उचित धार्मिक चिन्तन न होने के कारण अंधविश्वास तथा कुरीतियों का पालन ही समाज का मुख्य धर्म बन गया था।"[2] धार्मिक विद्वेष ने भारतीय जनमानस को गंभीर रूप से प्रभावित किया। मानवीय सम्बन्धों में अविश्वास और दूरियाँ उत्पन्न होने लगी। धार्मिक टकराव के चलते देश में हिंसक घटनायें हुईं। जिसमें हजारों लोगों को जान से हाथ धोना पड़ा।"[3] मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में उनका युग–प्रतिबिंबित होता है। तत्कालीन समाज में पनपती धार्मिक विद्वेषी की भावना को उन्होंने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

धर्म में बढ़ता अंधविश्वास और नारी

भारतीय समाज में परम्पराओं और रूढ़ियों का विस्तृत रूप चारों ओर देख सकते हैं। जब रूढ़ियाँ समाज में अपना साम्राज्य फैला लेती हैं। तब अंधविश्वास का रूप भी फैल जाता है। नारी कोमल और उदार भावों से परिपूर्ण होती है। इसलिए किसी भी बात का सरलता से विश्वास कर लेती है। यह अंधविश्वास नारी को ही नहीं उससे संबंधित परिवार और पूरे समाज को प्रभावित करता है। वर्तमान आधुनिक युग में जब दुनिया बहुत आगे बढ़ चुकी है, तब भी समाज में अंधविश्वास के विचारणीय रूप दिखाई देते हैं।

आरम्भिक काल में भारत की परिस्थितियाँ आज की परिस्थितियों से बिल्कुल भिन्न थी। शिक्षा के अभाव में भारतीय समाज अनेक रूढ़ियों और परम्पराओं तथा अंधविश्वासों में जकड़ा हुआ था। भूत–प्रेत, जादू–टोने की मान्यता निम्नवर्ग ही नहीं उच्च वर्ग में भी व्याप्त थी। तत्कालीन समाज में अंधविश्वास एवं परम्परानुमोदित कुरीतियाँ अपनी जड़े जमा चुकी थी। कभी–कभी भोली जनता उनकी बुराइयों को समझकर भी अपनी रूढ़िवादी मानसिकता का कारण उन्हें त्यागने का साहस नहीं जुटा पाती थी। ये अंधविश्वास समाज को भीतर से खोखला बना रहे थे।

आज भी समाज अथवा एक विशिष्ट वर्ग इन्हीं रूढ़ मान्यताओं से चिपका हुआ है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए एम.ए. गुप्ता ने लिखा है–"मानव प्रयत्नों की सफलता–असफलता ऐसी दैवी शक्तियों के हाथ में है, जो घटनाक्रम को परिवर्तित कर सकती है। आदिम समाज में प्राकृतिक और ईश्वरीय शक्ति में अंतर नहीं किया जाता है। उनके जीवन में अधिकांश घटनाएँ एवं क्रियाएँ धार्मिक अंधविश्वासों से प्रारम्भ होती है। उनका अलौकिक शक्ति में विश्वास विज्ञान की चमत्कारी देन के बावजूद भी वैसा ही बना हुआ है, जैसा पहले था।"[4] प्रभृत्ति विद्वान वियोगी हरि के एक उद्धरण से विश्वासों–परम्पराओं का औचित्य स्पष्ट हो जाता है–"भारत की परम्परा में हम धर्म और संस्कृति को संयुक्त रूप में पाते हैं, किन्तु धर्म का अर्थ यहाँ वह न लिया जाये जो मजहब या रिलीजन का है। धर्म उसे कहा गया है, जो व्यक्ति और समाज को धारण करता है, जो उनका आधार है। उसमें कर्त्तव्य का पूरा दायित्व समाया हुआ है। जिस बात से समाज का विघटन या अहित होता है वह धर्म नहीं है।"[5]

"किसी परम्परागत प्रचलित रीति अथवा पद्धति को बिना सोचे समझे बिना बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कसे, मान लेना अंधविश्वास है। इसे अटूट आस्था या अन्धश्रद्धा भी कहा जा सकता है।"[6] स्वातन्त्रयोत्तर कहानीकारों, विशेष रूप से आंचलिक कहानीकारों ने नारी की धर्म सम्बन्धी मान्यताओं का चित्रण करते हुए "अंधविश्वासिनी नारी की टोने–टोटकों के प्रति आस्था–अनास्था का चित्रांकन किया है। अंधविश्वासिनी, रूढ़िग्रस्त नारी किसी भी दुःख को किसी प्रतिद्वन्द्वी अथवा ईष्यालु व्यक्ति द्वारा किये गये जादू–टोने का प्रभाव मानती है। ऐसी नारी बिमारी के उपचार के लिए वैद्य अथवा डॉक्टर के पास न जाकर साधुओं तथा ढोंगियों के चमत्कारिक प्रयोगों का आश्रय लेती है।"[7] ग्रामीण समुदाय में भारत की प्राचीनतम संस्कृति के दर्शन होते हैं। जादू–टोना, जन्तर–मन्तर, भूत–प्रेत, पूजा तथा अन्य प्राचीनतम रूढ़ियों आदि का प्रचलन आज भी ग्रामीण समुदाय में देखने को मिलता है। इसी परिप्रेक्ष्य में नारी के उस रूप की चर्चा भी अपेक्षित है जहाँ वह 'ग्रहों' में विश्वास करती है। मैत्रोयी के 'बेतवा बहती रही' और 'अगनपाखी' ऐसे उपन्यास हैं, जिनमें नारी के ग्रह–नक्षत्र और ज्योतिष विद्या में अटूट विश्वास को दिखाया गया है।

"बैरागी के बिछोह में माता–पिता पगला उठे। आसपास के गाँव

गली छान मारे। पण्डितों से दिशाओं के जोग पूछे।"[8] अगनपाखी उपन्यास से एक उदाहरण द्रष्टव्य है–"बृहस्पतिवार, राहू, केतू, दिसासूल.....तंग आ गए हम तो। यह जेठ घर से निकलने नहीं देता। डुकरो समझ रही है, हम जाना नहीं चाहते।"[9] उपर्युक्त उदाहरण नारी के ग्रह नक्षत्रों में विश्वास को उजागर करते हैं।

ग्रामीणों में प्रचलित अंधविश्वास

ग्रामीण जन–जीवन का शोषण करने में पड़ा पुरोहित वर्ग जमींदारों व सामंतों से किसी भी प्रकार कम नहीं। अंधविश्वासों एवं भ्रान्त धारणाओं के शिकार भोले–भाले ग्रामीण इस वर्ग पर विशेष आस्था रखते हैं। ग्राम्य जनों की इस धर्म भीरुता का यथावसर, यथास्थान एवं यथासंभव लाभ उठाने में ये नहीं चूकते। ब्राह्मण वर्ग के इस कर्मकाण्ड के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए मैत्रेयी ने अपने उपन्यास झूलानट में लिखा है–तीन काल के ज्ञानी चंपादास बैद भोर की ठण्डी बेला में आकर बधाई देने लगे, "बालू की माँ, बोलो अष्टग्रह शांति और कुंडली कामना का मंत्र–पाठ झूठा तो नहीं पड़ा? मैंने क्या कहा था–चंडी माता तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करेंगी और जो वार खाली जाए, तो चंपादास नाम का कुत्ता पोसना।"[10] मनुष्य के कार्य में धर्म बाधा के रूप में उपस्थित हो जाता है। ईश्वर की सेवा करना ही धर्म नही है। बल्कि मानवता की सेवा करना सबसे बड़ा धर्म हो जाता है। पंडे पुरोहितों द्वारा बड़े–बड़े धार्मिक अनुष्ठान करवाये जाते हैं। मनुष्य के पास पेट भरने को भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता। मगर इन पंडों–पुरोहितों के लिए कहीं–न–नहीं से प्रबन्ध कर लेता है।[11] परम्परागत रूढ़िवादी एवं धार्मिक आडम्बरों में विश्वास रखने वाली अंधविश्वासी नारी धर्म को जीवन का आधार स्वीकारते हुए मूर्तिपूजा, देवपूजा, तुलसीपूजा तथा वटवृक्ष पूजा जैसे कार्य सम्पन्न करके मन की शांति प्राप्त करती है। माँ सरसुती अपने बेटे सुमेर के इतने दिनों बाद घर लौट आने पर बालकिशन को मंदिर भेजती है–"बेटा! जा पहले महामाई ढार आ। संकर महादेव पर पान–फूल और दूध चढ़ा आ। सुभ घड़ी के डेढ़ साल बाद लौटा है मेरा सुमेर। भूले–बिसरे, देव–पित्तर तुम्हारी जै रहे।"[12] चाक की सारंग अपने बेटे की रक्षा के लिए तरह–तरह से प्रयास करती है–"जाहर पीर पर शीश नवा देना चंदन का। लो यह मंगो दीदी ने सलामती का ताबीज दिया था। धागा नहीं मिल रहा था वहीं डोरा लेकर इसके बले में बांध आना। भूलना नहीं यही ढाल है। यही तलवार।"[13]

झूला नट की शीलो अपने पति को प्राप्त करने के लिए कठोर पूजा पाठ करती है। उसके अगले सात साल व्रत–उपवासों, गंडा–ताबीज, आंसुओं और मनौतियों में कटते हैं। "पूस माह के दिन, कड़ाके की ठंड, जप–तप का दौर चला भाभी अंधियारे ही ठंडे पानी से नहाकर तुलसी–पीपल ढारती। सुंदरकांड का पाठ करके रोटी बनाती फिर टुकनियाँ लेकर गाय–कुत्तों के पीछे–पीछे डोला करती।"[14] पुरानी पीढ़ी प्रायः अधिक अंधविश्वासी होती है। शीलो भी एक ऐसी ही नारी पात्र है उसका विश्वास है कि भक्ति भावना से प्रसन्न होकर भगवान उसके पति को वापस भेज देंगे। "इसके बाद व्रत उपवासो का सिलसिला। सोलह सोमवार। संतोषी माता के शुक्रवार। केला पूजन के बृहस्पतिवार। शनि ग्रह शांति के शनिवार।"[15]

उच्चवर्गीय अंधविश्वासी समाज में यह मान्यता प्रचलित है कि यदि कोई निम्न जाति का आदमी उनके पूज्य वृक्षों को छू देता है तो वे उन्हें श्राप दे देते हैं। मैत्रेयी ने अपने उपन्यास अल्मा कबूतरी में इस समस्या को दिखाया है–"पीपल, तुलसी के पेड़ कबूतराओं के छूने से जल जाते हैं या कज्जा लोगों को श्राप दे डालते हैं।"[16] इसी प्रकार ग्रामीण स्त्री वर्ग में अनेक अंधविश्वास प्रचलित है जिनका अध्ययन उपन्यासों के अन्तर्गत किया जा सकता है। छींकना और रास्ते में तेली का मिलना शुभ नहीं माना जाता–उर्वशी को गाँव के बाहर छोड़ने उसके साथ दादी भी गयी थी। घर से निकलते ही किसी ने छींक दिया। दादी चौक पड़ी–"उरवसी बिटिया ठहर जा। तनक पीछे जाइयो। चल लौट के पानी पीलै।"..... गाँव नखते ही रघुआ तेली आगे से आता दिखाई दिया। दादी वहीं बिदक गयी–फआज नहीं घर लौट चल बेटा। नदी नाब कौ चलवौ है। अच्छे सगुन नहीं हो रहे।"[17] कदमबाई बेटे के पहली बार चोरी करने जाने पर खरगोश का गोश्त खिलाती है। "कदमबाई ने जाल लगाकर खरा पकड़ लिया। खरगोश का गोश्त शुभ होता है। राणा के लिए मोटी रोटी बनेंगी, भरपेट खाकर जाएगा, चोरीवाले घर में हगना सगुन है।"[18] और नाई का भोजन न करना शुभ लक्षण नहीं।[19] पाँव हिलाना भूखे पेट सोना, पागल लोमड़ी का बोलना और सुनी दीवारें रखना अशुभ माना जाता था।

बऊ ने देखते ही हटोका "सूधें बैठ जा मंदा। पाँव नहीं हिलाते, दोस होता है।"[20] बऊ मंदा को डांटती हुई कहती है–उठो रोटी खा लो। भूखे पेट नहीं सोयें चाहिए, बुरये सपने आते हैं बिटिया। बर्राटे में डरा जाओगी।"[21] बऊ कहती हैं, "ये लिड़इया बोल रहे है, सुनो! पागल लोमड़ी होती है लिड़इया? लिड़इया का बोलना असगुन माना जाता है।"[22] "कुसुमा भाभी और मंदा के साथ–साथ निःश्वास भरा। बऊ अपनी साँस रोके रही। इतने आदमियों का मौन शोक असगुन माना जाता है।"[23] महाराज मंदाकिनी से कहते हैं, "अब लोक चित्रकलायें तो देखने को मिल जाये वहीं बहुत। कहाँ सूनी भीतें रखना असगुन माना जाता था।"[24]

पतिव्रता नारी को धर्म सम्बन्धी मिथ्याडम्बरों ने इतना हीन बना दिया कि पति का नाम भी नहीं लेती। विश्वास के अनुसार ऐसा करने से पति की उम्र कम हो जाती है सारंग रंजीत को नाम से बुलाती है, जिसे गाँव की बड़ी बूढ़ी स्त्रियाँ शुभ नहीं मानती। बऊ भी अपने पति का नाम नहीं लेती और जब भूल से नाम मुख से निकल जाता है तो पछताती रहती है–"बऊ ने बेध्यानी में आज पहली बार पति का नाम अपनी जुबान से लेकर परम्परा को खंडित किया। ख्याल आया तो पछताती रही।"[25] ग्रामीण समुदाय में यह विश्वास प्रचलित है कि जो लड़की कड़ाई चाटती है उसके विवाह पर बारिश होती है और "जिसकी बेटी कुंआरी रहती है उसकी सात पीढ़ियाँ गल जाती है।"[26] मैत्रेयी के विवाह के अवसर पर कस्तूरी जैसी समझदार स्त्री को भी अंधविश्वास घेर लेते हैं–"दिसम्बर के महीने में घटाएँ घिरने लगीं, कस्तूरी की आँखों में अंधेरा छाने लगा। मेह बरसने लगा तो? पानी बंद नहीं हुआ तो? शुक्र शनि नद गए तो? आशंकाओं ने कस्तूरी को अंधविश्वासों पर उतार दिया–इस लड़की ने कढ़इया को नहीं चाटी? खुरचनी तो नहीं खाई?"[27] इस प्रकार हम देखते हैं ग्रामीण स्त्री समुदाय के साथ उच्च समाज भी अनेक अंधविश्वासों से घिरा हुआ है। जिसका स्पष्ट उदाहरण इन उपन्यासों में मिल जाता है।

भूत–प्रेतों पर विश्वास

तन्त्रशास्त्रों में आलौकिक शक्ति सम्पन्न भूत–प्रेतों को अपदेवता के रूप में स्वीकार किया गया है। इनके विषय में समाज में मान्य धारणाएँ अत्यन्त प्राचीन हैं। बुंदेलखंडी जनमानस में भी ऐसे लोग हैं जिनका भूत प्रेतों में परम्परागत विश्वास बना हुआ है। किसी देवता का अनादर करने से भी किसी को भूत लग जाता है।[28]

मैत्रेयी का विश्वास है कि पिछड़ा हुआ जन समाज धार्मिक अंधविश्वासों एवं पाखंडों में अगाध विश्वास रखता है। कैसे पाखण्डी व्यक्ति जनसाधारण को धर्म के नाम पर ठगते हैं, अबोध भारतीय जनसाधारण अंधविश्वासों में फंसकर किस प्रकार अपना अहित कर

रहा है, इसका यथार्थ चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। आज धर्म की पुनर्व्याख्या ने रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों पर प्रश्नचिह्न लगा दिया है। बी. रसल के अनुसार–"विज्ञान के प्रकाश में परम्परागत कुरीतियों, रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों का अंधकार तिरोहित हो गया। वैज्ञानिक युग के पूर्व विश्व में ईश्वर सर्वशक्तिमान समझा जाता था। ईश्वर को प्रसन्न रखना ही प्राकृतिक दुर्घटनाओं से बचने का एक मात्र उपाय था। अतः ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिए आवश्यक था कि मानव अपनी असमर्थकता, शक्ति हीनता तथा नम्रता व्यक्त करके ईश्वर पर पूर्ण विश्वास करें।"[29] मैत्रेयी ने अपने उपन्यास में लोगों की भूत–प्रेत सम्बन्धी मान्यताओं को उजागर किया है। राममूर्ति के अंधेरे में चिल्लाने पर लोग सिरी बीबी कहती है–"अंधेरे में डर गई है। हाथ पर नील पड़ गया। कैसे? भूत प्रेत भी नील डाल देते हैं। मनोहर की बहू भूत ने पकड़ ली थी। पूरी देह नीली"...औरतें कहती हैं–बाहरी हवा ऐसे ही पत्थर कर देती है आदमी को। खून का पानी कर देती है। अकेली–दुकेली जवान होती छोरी...कच्ची उमर में ही धर दबाती है ऊपर की हवा।[30] सारंग श्रीधर से पूछती है जिरौली वाली का तमाशा तुमने नहीं देखा तो देख लोगे। लोग कहते हैं कोई देव या चुड़ैल! तुम कहोगे अंधविश्वास।... चुड़ैल चढ़ी औरत में दस पट्ठों के बराबर ताकत आ जाती है। किसी ने धोती पहनाई, उसने तुरंत उतारकर फेंक दी।... गुगुल, सिंदूर, आक के पत्ते। धुजा नारियल–देवी के पूजन की सामग्री। मोरपंखी की झाड़ू, मिर्चों की धूमनी, जलते अंगारे–चुड़ैल विदा करने के उपाय।"[31]

इसी प्रकार जब बीमार राणा जमुनी का नाम नींद में लेता है तब सभी ये सोचते हैं कि राणा को जामुन के भूत ने पकड़ लिया है। "हाय देवी माता, जमुनी चुड़ैल ने धर दबाया।" भजनी भूत पिशाचों पर विश्वास करने लगी है। कज्जा लोगों का असर। सरमन गुनियाँ बुलाने लगा है। कहता है कज्जा लोगों के भूत धर दबाते हैं।.... गुनियाँ जानता है वीर देवता उनका देव है। वीरदेव की स्थापना की। लिपी हुई चबूतरी पर बेर के पत्ते, पान का पत्ता, गुड़ और बकरी का खून चढ़ाया। रोटी का चूरमा और लाल कपड़ा। मद और तेल पास में रखा है।...राणा बीमारी से बेहाल सिर झुकाकर बैठा है। गुनियाँ को आस्था–विश्वास से देखती माँ...। गुनियाँ ने भोग कबूल लिया। देवता मान गये। बोल दारी, तू कैसे आई। गुनियाँ सिर हिलाकर झूमता है और खुद ही जवाब देता है।...गुनियाँ ने झाड़ू उछाली कि राणा ने भरपूर लात मारनी चाही। मगर वह पूजा के दीए पर मुहँ के बल गिरा। असगुन मनहूस लड़का। लोगों ने राणा को पकड़ लिया और पीटने लगे। कदमबाई पीली पड़ गई। कपूत ने धर्म के दीए को बुझा दिया। लोग ही क्या कम थे जो देवताओं को कूपित करने चला है।[32]

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्रामीण समुदाय के लोग रोग होने पर डॉक्टर के पास न जाकर ऐसे पाखण्डी एवं ढोंगी फकीरों के पास जाते हैं जो भोली–भाली स्त्रियों को मूर्ख बनाता है। इस वर्ग की स्त्रियाँ भूल प्रेत सम्बन्धी मान्यताओं पर आँख बंद करके विश्वास करती है। सामाजिक रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों की अपेक्षा धार्मिक रूढ़ियों व अंधविश्वासों की नींव अधिक गहरी एवं मजबूत होती है। बेलिंस्की के शब्दों में, "अंधविश्वास तो सभ्यता की उन्नति के साथ लोप हो जाते हैं, किन्तु धार्मिकता बहुधा बाद में भी जारी रहती है।"[33]

उपर्युक्त अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि लेखिका ने तत्कालीन समाज में व्याप्त जादू–टोने, भूत–प्रेत, अंधविश्वास की घटनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया है। कपटी साधुओं और महात्माओं के सम्बन्ध में फैली भ्रामक धारणा को लेखिका ने तर्कपूर्ण ढंग से बुद्धिजीवी कसौटी पर कसने का प्रयास किया है। अगनपाखी उपन्यास की भुवन तांत्रिक महात्मा और उसकी नीतियों का विरोध करती है। मैत्रेयी के नारी पात्र प्राचीन रूढ़ियों और अंधविश्वासों से मुक्त होने का प्रयास करते हैं।

भक्ति भावना

ईश्वर के प्रति समर्पण एवं भक्तिभाव मानव को परेशानियों में बल देता है। किसी भी रूप में भगवान की आराधना भारतीय जनता का सबसे बड़ा सम्बल रहा है। तीर्थ यात्रा, व्रत उपवास, मंत्र पाठ, जाप, हवा आदि धार्मिक कृत्यों को पुण्य माना गया है। मंसाराम सभी ओर से तिरस्कृत और अपमानित होने के बाद ईश्वर की भक्ति में लग जाता है। भक्ति ने मंसाराम को शक्ति प्रदान की, अब किसी प्रकार की कमजोरी नहीं लगती। जनेऊ पहनकर एक युक्ति और सूझी–फ्मंदिर बनवाना अपने आप में पवित्र पुण्य और समाज के उद्धार का काम है, क्यों न गंदी पोखर–सी कबूतरा बस्ती को खोद–पूरकर वहाँ शिवमंदिर की स्थापना की जाए? गाँव की जनता उनका कीर्तन करने लगेगी। मंसाराम के भीतर धर्म ही धर्म था। उनकी दिनचर्या बदलने लगी। सवेरे उठते ही ईश्वर का ध्यान करते, नहा–धोकर भगवान का भोग लगाते। तब सहधर्मिणी के हाथ से दूध का कटोरा लेकर पंचामृत की तरह पीते। दिन भर गीता सार और रामायण पढ़ते।"[34]

हिन्दू धर्म में मंत्र भारतीय संस्कृति के सार है। इनके अन्तर्गत सबके सुख की कामना की गई है। घर की शुद्धि के लिए मंत्रोच्चारण के साथ–साथ हवन भी किया जाता है। इदन्नमम उपन्यास की मंदा को महाराज के आश्रम का भक्ति भाव से परिपूर्ण वातावरण भक्ति रस से सराबोर कर देता है। "यह समिधा जलने की सुगंध! हवन हो रहा है, महाराज का स्वर गूंज रहा है–"ओ3म् भूर्भवः स्वः अग्नि ऋषि पवमानः पांचजन्य। पुरोहितः तमीमेह महागयम् स्वाहा। इंद अग्ने पवनाय इदन्नमम।।"[35] मंसाराम ने ऐसे यज्ञ का आयोजन किया था जैसा मंडोरा खुर्द में आज तक न हुआ।[36] विजन उपन्यास में अजय की माँ नई फेको मशीन के उद्घाटन के एक दिन पहले से निर्जल उपवास पर थी। ग्यारह ब्राह्मणों को भोजन कराया और साथ में वस्त्र और दक्षिणा भी दी।

"पूजापाठ का माहौल जैसे मरीजों के लिए पवित्र वातावरण रच गया है। गणेश जी की मूर्ति चन्दन की चौकी सहित रिसेप्शन के बीचों बीच रख दी गयी–विघ्नकारी विनायक गणेशायः नमः।"[37]

भारतीय संस्कृति में भाग्य को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। इसके अनुसार भाग्य ही सब जगह फलता है। विद्या और परिश्रम नहीं। मनुष्य के भाग्य को ईश्वर भी नहीं जानते हैं। मनुष्य की तो बात ही क्या? मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में भी यही भाग्यवादी विचारधारा स्थान–स्थान पर दृष्टिगोचर होती है। अगनपाखी उपन्यास की भुवन भाग्यवादी है वह अपने इस जन्म के दुःखों का कारण भाग्य को मानती है।

ग्राम जीवन की धार्मिक चेतना का यह पक्ष कापफी सबल है देवी, देवताओं, पीर–पैगम्बरों की पूजा ये ग्रामीण लोग अधिकांशतः करते हैं। यही स्थानीय देवता इनके लिए ईश्वर के प्रतीक रूप हैं। धर्म का प्रतिरूप तो इसे कहा ही जा सकता है। गाँवों में अभी अज्ञान और अशिक्षा इतनी है कि उन्हें पूर्ण रूप से ईश्वर की अमूर्त धारणा को समझाया नहीं जा सकता। अतः उनके बीच उनकी आस्था के केन्द्र बिन्दु यही देवी देवता हैं, समय–कुसमय इन्हीं की शरण में वे पहुंचते हैं और विशिष्ट अवसरों पर इनकी पूजा करते हैं। आधुनिक जीवन में जबकि ईश्वरत्व का लोप होता जा रहा है। गाँवों में इन्हीं देवी–देवताओं के रूप में धार्मिकता शेष है। सारंग पथवारी मइया से क्या माँग रही है? "ओ मेरी देवी, गाँवों में पफसलें उगें, बढ़ें,

लहलहाएँ और घर भर जाएँ हमारे। ओ चामड़ मइया, केलोसी सिंह का हौंसला पफसल की तरह छा जाये अखाड़े पर। ओ भवानी तू ने हमारा विश्वास ही तोड़ दिया तो अगले साल यह पूजा किस विधि सम्पन्न होगी?"[38]

इदन्नमम की मंदा अपनी माँ से मिलने सैदनगर जाती है। मंदा को याद है कि वह इस जगह अम्मा और बऊ के साथ आयी थी। "अक्षरा देवी, रक्तदंता देवी ऐसे ही नाम थे शायद। वहाँ गये थे हम लोग। अम्मा ने सैयद बाबा के चबूतरे पर मनौतियाँ मानी थी। नारियल चढ़ाया था। पेड़ के पटका बाँधा था। परसाद बाँटा था। अम्मा के साथ सरोवर में नहायी थी। बऊ जल्दी मचाये थी कि रात न हो जाये। रात के समय यहाँ कोई ठहरता–बसता नहीं। बऊ चर्चा चलने पर अब भी बताती हैं कि महात्मा विट्ठलदेव ठहरे थे मंदिर में, तो देवी ने साक्षात् दर्शन दिये थे उन्हें। तब से लोग डरने लगे हैं।"[39] झूला नट की शीलो और माँ देवी–देवताओं पर आस्था रखती है। पति को पाने के लिए शीलो सभी देवी–देवताओं की पूजा करती है। सुमेर के लौटने पर माँ बालू से जगह–जगह प्रसाद चढ़वाती है। "हनुमान! हवा की सवारी! अम्मा यात्रा के शुभ सगुनों के चलते चुप–चुप देहरी पर पानी के छींटे दे रही थी। थान वाले देव पर मीठा रोट चढ़ाने की बोल रही थी।"[40] परमसत्ता में विश्वास करने की भावना धर्म का उद्‌गम स्थल है। ग्रामीण अपने दिन की शुरुआत भगवान के स्मरण से ही करते हैं।

धर्म का अंधानुकरण

धर्म के नाम पर जनता की मूर्खता और अन्धश्रद्धा से लाभ उठाकर मौज करने वालों की कमी भी हमारे समाज में नहीं है। ग्रामीण लोगों की पण्डित पुजारी के प्रति अगाध श्रद्धा होती थी। वे उन्हें देव का दूत समझकर पूजते थे। पाप–पुण्य की धारणा नरक–स्वर्ग, मृत्यु आत्मा का संताप भूत–प्रेत से अनिष्ट का भय जनमानस में इतनी गहराई से व्याप्त है कि व्यक्ति रूढ़ियों से हटने का साहस नहीं कर पाता। समाज के जीवन पर धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों ने समाज विरोधी तत्त्वों को बढ़ावा दिया। समाज में एक वर्ग ही पैदा हो गया जिसने नित नये देवताओं और धार्मिक विश्वासों का भय देकर साधारण जन–जीवन का शोषण किया और अपने अस्तित्व की नींव मजबूत करने में जुटा रहा। इस तरह पंडा, पुरोहितों, साधु–संतों, योगी, वैरागियों का एक बड़ा वर्ग अकर्मण्ता भोगी हो गया है। समकालीन लेखकों ने समाज के इस पक्षघाती वर्ग पर व्यंग्याघात किया है। इनके पाखण्ड और धूर्तता भरे चरित्र का पर्दाफाश करके इनके मिथ्याभय के विरुद्ध समाज में बौद्धिक चेतना को उद्‌बुद्ध करने का प्रयास किया है। प्राचीन युग में साधु लोग सच्चे अर्थों में साधु होते थे। वे 50 वर्ष की आयु के पश्चात् साधुवृत्ति धारण करके मोक्ष की कामना करते थे। परन्तु समय की परिवर्तनशीलता के साथ–साथ इन साधु–संतों ने भी अपना व्यवसाय त्याग दिया और पाखण्डवाद आरम्भ कर दिया। आजकल के साधु मंदिरों में व्याभिचार करते हैं। अशिक्षित स्त्रियाँ इन साधुओं के बहकावे में आकर अपना घर लुटवा देती हैं। कभी–कभी तो इन साधुओं के साथ भाग जाती हैं। इस प्रकार का चित्रण अपने उपन्यासों में लेखिका ने ढोंगी साधुओं की पोल अच्छी प्रकार से खोली है तथा इससे बचने के लिए समाज को सावधान भी किया है।

विजन और अगनपाखी उपन्यास में लेखिका ने नारी पात्रों की इसी अंधश्रद्धा का चित्रण किया है। भुवन की सास अपने पगले बेटे के इलाज के लिए तांत्रिक महात्माओं के पास जाती हैं। भुवन चन्दर को बताती हैं कि "पहले हमें विजय को लेकर राजस्थान जाना पड़ा, उससे पहले उन्नाव वाले बाबा, उससे भी पहले भगवंतपुरा के मठ पर, वही भूतविद्या। जूता, कडुआ मारपीट और मंत्र–तंत्र। कोई करिश्मा क्यों नहीं होता चन्दर सफर भी बेकार जाता है।"[41] भुवन की सास चाहती है कि भुवन भी पुरोहित तांत्रिक स्वामी का मान करें क्योंकि उनकी अवज्ञा भगवान की अवज्ञा है। लेकिन भुवन चन्दर को बताती है कि किस प्रकार तांत्रिक धर्म की आड़ में नारी जाति का शोषण कर रहा है। "मगर वह तो बता रही थी साधु नंगा हो गया था। उससे जोर–जबरदस्ती करने लगा सो उसने दाढ़ी पकड़कर खींच धरी। वह चिंघाड़ा।"[42] भुवन बताती है कि विजय को जो दौरा महीना में पड़ा था अब दो दिन चार दिन का बीच देकर पड़ने लगा और सास ने यह नतीजा निकाला कि यह सब तांत्रिक के अपमान का फल है। अपने भाई की बिगड़ती हालत को देखकर अजय सिंह परेशान है, फिर भी उन्हें साधु संतों की भक्ति पर अब भी विश्वास है। "हम तो सारे उपाय कर रहे हैं। अस्पताल की भी खाक छानी। क्या हुआ? उन्नाव वाले बाबा के यहाँ धोक दी थी तो हिम्मत बंधी थी, डॉक्टर तो इलाज जैसा भी करें, हिम्मत तोड़ने से बाज नहीं आते। केस बिगड़ गया है कि जगह हमारे भाई के लिए कोई मृत्युंजय जप करे तो हमारी श्रद्धा किस तरफ झुकेगी? विश्वास कहाँ रुकेगा? निराशा से तो मनोरथ खुद ही नष्ट हो जाते हैं। अपने मनोरथों का नाश कौन चाहता है?"[43]

विजन उपन्यास के डॉ. शरण भी दिव्य महात्माओं पर विश्वास करते हैं और उनकी आवभगत भी करते रहते हैं। "अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त बाबा आन्दाचार्य आँखें मूंदे होठों के आसपास दबी दाढ़ी मूँछों में मुस्करा रहे थे। धर्म के रहस्य, जीवन के मोक्ष और बैकुण्ठवास के प्रयत्नों पर अविराम धारा प्रवाह बोलने वाले का प्रवचन होने वाला था। ये बाबा वही बाबा हैं जिनकी डॉ. शरण में घर में अक्सर ही चर्चा चल जाती है। इन बाबा को श्रीमती शरण ने अपने काशी प्रवास के दौरान खोज निकाला था। पत्नी द्वारा बुलाए गए आनन्दाचार्य शरण सेंटर की शान का इजाफा करने में सहायक होंगे। यही किसी पतिव्रता का वरदान है।"[44] इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय समाज में धर्म के नाम पर आर्थिक शोषण का भी बहुत प्रचार था। धार्मिक पण्डे, पुरोहित धर्म के नाम पर हजारों रुपये ऐंठते रहते थे और अंधविश्वासी भारतीय जनता इस शोषण का शिकार हो रही थी। धर्म के क्षेत्र में बाह्याडम्बरों का अत्यधिक प्रचार इसी कारण हुआ। किस प्रकार समाज के लोग धर्म का अन्धानुकरण कर रहे हैं यह बात मैत्रेयी के उपन्यासों में स्पष्ट हो जाती है।

धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम

धर्म की आडम्बरपूर्ण नीतियों के कारण ही आज जातियाँ विभाजित हो गई हैं। इनमें विभिन्न धर्मों का प्रचलन हो गया है और वे एक दूसरे धर्म के मानने वालों को अवसर हाथ आते ही उनके साथ मारपीट शुरू करने में देर नहीं लगाते हैं। मारपीट करके उसे अपनी धार्मिक सभ्यता के अनुसार बात मनवाने पर शारीरिक यातनाएँ सहते हुए अपने ही धर्म की रक्षा करते हैं। जाति को भी धर्म चिन्तन के सहारे से बड़ा बलवती किया जा रहा है। नारी जीवन संघर्ष की पद्धति जाति और अनैतिकता के कारण बढ़ रही है। वर्तमान में सामाजिक परिस्थितियों को भी परिवर्तित करना चाहिए। जहाँ से समस्याएँ स्वतः ही समाप्त होती चली जाएँ। समाज का दृष्टिकोण आत्म अवलोकन के साथ सभी पर एक समान होना चाहिए। युगों–युगों से धन और धर्म के नाम मनुष्य का शोषण होता रहा है। मनुष्य की धार्मिक भावनाओं को झकझोर कर कुछ भी करवाया जा सकता है। मुख्यतः धर्म का दूसरा नाम राजनीति है। धर्म के नाम पर नेता राजनीति करते हैं और लोगों का धार्मिक शोषण करते हैं।

स्वतन्त्रता के पश्चात् देश को अनेक भीषण समस्याओं का सामना करना पड़ा। उनमें साम्प्रदायिकता आज भी ज्वलन्त समस्या बनी हुई है। "हिन्दी उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में साम्प्रदायिकता की समस्या को कई दृष्टिकोणों से देखा और परखा। उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों के कारणों तथा उसके द्वारा हुई मानवता की क्षति का चित्रण किया है। धार्मिक कट्टरता का विरोध किया है तथा साम्प्रदायिकता का आरोप हिन्दू–मुस्लिम नेताओं पर लगाया है।"[45] अतः आज यह साम्प्रदायिक समस्या रूढ़ि बन गयी है। "रूढ़ियों में देखने का अभ्यास ही साम्प्रदायिकता को जन्म देता है। आज रूढ़ियों के संकुचित दायरों को तोड़कर वृहत दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है।"[46]

वर्तमान समय में जातिवाद का दीमक हमारे सम्पूर्ण समाज को धीरे–धीरे नष्ट कर रहा है। साम्प्रदायिकता की समस्या ने आज भयंकर रूप धारण कर लिया है। इस समस्या से मुक्ति हमें अपने संकुचित विचारों को त्यागने पर ही मिलेगी। "यह एक विडम्बना ही है कि एक ओर भारत जहाँ धर्म निरपेक्ष राष्ट्र है, वहीं दूसरी ओर प्रत्यक्ष रूप से न सही, परोक्ष रूप से ही यहाँ जातिगत भेदभाव को बढ़ावा ही मिल रहा है। वोट, जाति के आधार पर ही खरीदे बेचे जाते हैं और आरक्षण जातिवादिता को गति देने का परिष्कृत रूप है।"[47] मैत्रेयी पुष्पा ने इस साम्प्रदायिक समस्या को अपने उपन्यासों में उठाया है।

भारत विभाजन के समय जिस राजनीतिक भूल ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच अलगाव और भेद की भावना को जन्म दिया था उसका विनाशकारी रूप अब देखने को मिल रहा है। सदियों से चली आ रही हिन्दू–मुस्लिम एकता की भावना समाप्त हो गई है। वे एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। इदन्नमम की कुसुमा, बऊ और मंदा को बताती है कि किस प्रकार गाँव के लोग चीफ साहब के विरोधी हो गए–"नमाज–बन्दगी को उस टूटी–फूटी मस्जिद में भी जा सकते थे। पर अपने गाँव के आदमियों की आँखों में तो शैतान बैठ गया। अल्ला–ईसुर की पवित्र जगह राष्छतों ने गू–मूतों से भर दी। ठौर–ठौर गन्दगी। दुरगंध। घिनापन...फिर क्या? एक दिना की बात होती तो अन्त हो जाता नफरत का रोज–रोज का सिलसिला चल निकला। पनका मेहतरानी से सफाई करा देते थे चीफ साहब, सो नासपिटों ने उसको भी धमका दिया। हिन्दू होके मुसलमान के घरै सफइयत न कर। सो डरन के मारे वो भी न आवै।"[48] सिर्फ वोट के लिए जातिवाद एवं साम्प्रदायिकता का ज़हर जो इन नेताओं ने हमारे बीच घोला है। उससे देश का सामाजिक ढाँचा ही बदल गया है। 'चाक' उपन्यास का भँवर इसी समस्या की ओर संकेत करता है–"मैं चिढ़ता नहीं बताने की कोशिश करता हूँ, जाति–बिरादरी आजकल राजनीति का मुद्दा ज्यादा बनी हुई है। इस भेद को सान चढ़ाया है उन नेताओं ने, जो शहर की हवा खा गए हैं। शहरी लोग खुद तो जाति–वाति के चक्कर में पड़ते नहीं अखबारों के जरिए गाँवों में चिंगारियाँ छोड़ते रहते हैं।"[49]

साम्प्रदायिकता के विषैले तत्त्व को उभरती हुई युवा शक्ति ने पहचाना है। इदन्नमम उपन्यास में मस्जिद के ध्वंस के समय गाँव में हुए साम्प्रदायिक अंगों में चीफ साहब को बचाने के लिए दादा बखरी की चौखट के आर–पार लेट चिल्ला–चिल्लाकर कहते हैं–"लो अब आओ ओर करो हमारा कतल! चलाओ हमारी घिची पर आरी! काढ़ो हमारे पिरान!.... अरे पिरकास! घुसो हमारी लहास पर पाँव धरकर।"[50] साम्प्रदायिक सद्भाव और धर्म निरपेक्षता के पक्षधर दादा की यह भूमिका सभी का मार्गदर्शन करने वाली है। दादा को मुस्लिम पड़ोसी पर इतना भरोसा है कि बऊ और मंदाकिनी को उन्हीं के घर में छिपाते हैं। हिन्दू और मुस्लिम परिवारों के जीवन–व्यवहार में एकता एवं सामंजस्य दिखलाकर लेखिका ने साम्प्रदायिक सद्भाव के जातीय आधार को रेखांकित किया है।

आरक्षण के बारे में भी लेखिका ने अपने विचार इदन्नमम उपन्यास के माध्यम से व्यक्त किये हैं। लेखिका आरक्षण को वोटों का व्यापार मानती हुई यह आशा करती है कि अनुसूचित जाति के युवा स्वयं आगे बढ़कर इस बैसाखी को अस्वीकार कर देंगे। अयोध्या विवाद की खबर पढ़कर श्यामली गाँव में भी धर्म चेतना उग्र रूप धारण करती है और दादा चिल्लाते ही रह जाते हैं कि निर्जीव रेडियो–अखबार के कहने पर जीते जागते अपने पड़ोसियों को तबाह क्यों कर रहे हो। भृगुदेव एक विशिष्ट चरित्र है, जो अनुसूचित जाति का सदस्य होकर भी आरक्षण का विरोध करता है। वह कहता है "यह तो निश्चित है कि जब तक आरक्षण रहेगा, हमारी जातियों को उपेक्षा सहनी पड़ेगी और कुंठाएँ झेलनी होंगी। काश वह दिन आए कि अनुसूचित जाति में आने वाले छात्र आगे बढ़ें और अस्वीकार कर दें आरक्षण की बैसाखी को। यह हौंसला आए हमारे भीतर कि इस हेय भीख से मुक्ति पाएँ। अपंग ही न बनी रहें आने वाली पीढ़ियाँ। वोटों का व्यापार है यह। अपने मत के बदले में पाते हैं हम लड़खड़ाती हुई उपाधि, डिग्री, पद–प्रतिष्ठा।"[51]

उपर्युक्त उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता किस प्रकार घर कर गई है। आज चुनाव साम्प्रदायिकता के आधार पर जीता जाता है। आज एक जाति दूसरी जाति को हीन दृष्टि से देखती है। जाति के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे हो रहे हैं। हिन्दू–मुसलमान आपस में लड़ रहे हैं। आरक्षण के द्वारा भी एक जाति के लोग दूसरी जाति को हीन दृष्टि से देखते हैं लोगों में सहिष्णुता तथा पारस्परिकता की भावना का विकास करना होगा।

आज आवश्यकता है कि समाज को संगठित होकर साम्प्रदायिक शक्तियों के विरोध में उठ खड़ा होना चाहिए। धर्म की उन संकीर्ण परम्पराओं, मान्यताओं को जिनसे समाज का अहित होता हो तथा जो व्यक्ति को व्यक्ति से लड़ाने वाली है, सर्वथा समूल नष्ट कर देना चाहिए। यह तभी संभव है जब हमारा समाज वैज्ञानिक जीवन शैली को अपनायेगा। विज्ञान सत्यान्वेषण की प्रेरणा देता है तथा सत्याधारित समाज के निर्माण की चाह रखता है। धर्म विज्ञान की ही तरह सत्य का खोजी और पोषक है पर सम्प्रदायवाद सत्य पर परदा डालता है। लेखिका ने अपने नारी पात्रों द्वारा सम्प्रदायवाद का विरोध कराकर सत्याधारित समाज के निर्माण की कामना हो ही प्रमुखता दी है। मैत्रेयी पुष्पा ने दादा, कुसुमा, सारंग, मंदा, भुवन आदि पात्रों के माध्यम से पारस्परिक प्रेम एवं सद्भाव की अभिव्यक्ति की है। राजनीतिज्ञों को इस विकराल समस्या से बचने के लिए स्वार्थ परायणता, सत्तालोलुपता तथा तुष्टिकरण का मार्ग बंद करना होगा।

संस्कृति की परिधि में जीवन से संबंधित वे सभी तरीके या ढंग आ जाते हैं जो कि व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। संस्कृति का क्षेत्र संकुचित नहीं होता वरन् जीवन की समग्रता का नाम ही संस्कृति है। परन्तु अब धर्म का स्वरूप विकृत हो गया है। धर्म के नाम पर आजकल क्या कुछ नहीं किया जाता है। भारतीय समाज में तो अनेक धार्मिक रूढ़ियाँ व्याप्त हैं। धर्म के नाम पर यहाँ पर्याप्त अंधविश्वास फैल गए हैं। हमारे सामाजिक जीवन में जो क्रियाएँ धार्मिक मान्यताओं का रूप धारण कर गई, उनका उल्लंघन करना अपराध माना गया। प्राचीनकाल से ही शादी–विवाह को धार्मिक संस्कार माना जाता है। इतना ही नहीं समस्त सामाजिक कार्यों में पंडा, पुरोहित वर्ग ही नेतृत्व करता है। उसके द्वारा प्रयुक्त वाक्य 'ब्रह्म वाक्य' माना जाता है।

जनता की परम्परागत धार्मिक मान्यताएँ और रूढ़िवादिता समाज के

लिए बहुत बड़ा अभिशाप है। समाज में ऐसे व्यक्तियों का भी अभाव नहीं है जो सीधे सादे धर्मभीरू प्राणियों की धर्मभीरूता से अपना स्वार्थ सिद्ध करने से नहीं चूकते। वैवाहिक रूढ़ियाँ, अंधविश्वास, देवी–देवता, पूजा, व्रतोपवास, तीर्थ स्थान, गंगा स्नान, जादू–टोने, भूत–प्रेत तथा ज्योतिष इत्यादि की धार्मिक संस्थाएँ भी समाज में व्याप्त है। जिनका स्पष्ट चित्रण मैत्रेयी ने अपनी नारी पात्रों के माध्यम से किया है।

निष्कर्ष

मैत्रेयी जी का समय धार्मिक दृष्टि से पारस्परिक कटुता का समय था। सामान्य जनमानस धर्म के मूल रूप को भूल गया था। धर्म साम्प्रदायिकता में परिणत हो गया था। प्राचीन भारतीय साहित्य धर्म के विभिन्न रूपों से भरा हुआ है। धर्म के नाम पर अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गईं जिसके कारण सामाजिक जीवन में उथल–पुथल उत्पन्न हुई। साम्प्रदायिक कट्टरता उत्पन्न करने में भी धर्म ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। लोग आडम्बरों में ज्यादा विश्वास करने लगे थे। चरित्रगत उन्नयन आडम्बर की अपेक्षा फीका पड़ गया था। धार्मिक भेदभाव, साम्प्रदायिकता, धार्मिक कर्मकाण्ड और अंधविश्वास का ही सर्वत्र बोलबाला था। चाहे हिन्दू हो या मुस्लिम सभी अपने राष्ट्रीय कर्त्तव्य को विस्मृत किए हुए हैं। लेखिका ने धर्म की आड़ में शोषण करने वाले ब्राह्मण, पुजारी, साधु, महात्माओं पर कड़ा प्रहार किया है। मैत्रेयी के नारी पात्र परम्परागत, रूढ़ियों से ग्रस्त अनैतिक मान्यताओं का विरोध करते हैं। कस्तूरी, मंदा, सारंग, गुलकंदी, कुसुमा, भुवन आदि नारी पात्र द्वारा तिरस्कृत किये जाने पर भी अनैतिकता और धर्म का अंधानुकरण नहीं करती और उच्च नैतिक मानदण्डों की स्थापना का प्रयास करती है।

संदर्भ सूची

1. सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ. 298
2. बाबूराम गुप्त, उपन्यासकार नागार्जुन, पृ. 27
3. सं. रामलखन शुक्ल, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 499
4. एम.ए. गुप्ता, डी.डी. शर्मा, भारतीय समाज एवं सामाजिक संस्थाएँ, पृ. 435
5. वियोगी हरि, हमारी परम्परा, प्रस्तावना, पृ. 5
6. पुष्पा बत्तरा, अभिमन्यु अनन्त के उपन्यासों में भारतीय जीवन, पृ. 42
7. डॉ. अनिल गोयल, हिन्दी कहानी में नारी की सामाजिक भूमिका, पृ. 152–153
8. मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, पृ. 20
9. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, पृ. 154
10. वही, झूलानट, पृ. 30
11. डॉ. शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 105
12. मैत्रेयी पुष्पा, झूलानट, पृ. 46
13. वही, चाक, पृ. 63
14. वही, झूला नट, पृ. 42
15. वही, पृ. 43
16. वही, अल्मा कबूतरी, पृ. 81
17. मैत्रेयी पुष्पा, बेतवा बहती रही, पृ. 97
18. वही, अल्मा कबूतरी, पृ. 56
19. वही, पृ. 322
20. वही, इदन्नमम, पृ. 12
21. वही, पृ. 22
22. वही, पृ. 57
23. वही, पृ. 258
24. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 310
25. वही, पृ. 162
26. वही, कस्तूरी कुंडल बसै, पृ. 13
27. वही, पृ. 211
28. डॉ. भीष्म मखीजा, उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा और लोकजीवन, पृ. 87
29. Betrard Russel- The Impact of science on society (1952 Marriage & Moral), Page-24-25
30. मैत्रेयी पुष्पा, चाक, पृ. 211–212
31. चाक, पृ. 213
32. अल्मा कबूतरी, पृ. 50, 51, 52
33. लक्ष्मणदत्त गौतम, आधुनिक हिन्दी कहानी साहित्य में प्रगति चेतना, पृ. 227
34. मैत्रेयी पुष्पा, अल्मा कबूतरी, पृ. 27
35. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 191
36. वही, अल्मा कबूतरी, पृ. 28
37. वही, पृ. 166
38. मैत्रोयी पुष्पा, चाक, पृ. 108
39. वही, इदन्नमम, पृ. 112
40. वही, झूला नट, पृ. 46
41. मैत्रेयी पुष्पा, अगनपाखी, पृ. 94
42. वही, पृ. 98
43. वही, पृ. 155
44. मैत्रेयी पुष्पा, विजन, पृ. 164
45. डॉ. कुंवरपाल सिंह, हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना, पृ. 157
46. डॉ. हेमेन्द्र पानेरी, स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी उपन्यास : मूल्य संक्रमण, पृ. 261
47. डॉ. शशि जेकब, महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में वैचारिकता, पृ. 84
48. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 257
49. वही, चाक, पृ. 392
50. वही, इदन्नमम, पृ. 255
51. मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ. 343